आत्म-पुराण

जिंदर

आत्म-पुराण

मरजाणी! कुत्ती! लुच्ची!

https://www.hindiadda.com/aatm-puran/

ये शब्द मैंने अकेली ने नहीं गढ़े। मेरे साथ दो और हैं। सपना और मनप्रीत। हैं नहीं, थीं। एक बीच में ही साथ छोड़ गई। शायद, थोड़े समय के लिए। वह यहीं-कहीं है। आसपास। दाएँ-बाएँ। मेरी यादों पर भारी। मुझे भूला-बिसरा याद कराती। हँसाती। रुलाती। झिड़कती। घूरती।

ये दोनों मेरे जैसी ही हैं। मेरी कॉर्बन कापी। या फिर मैं हीं उनकी कार्बन कापी हूँ। जब तीनों मिल बैठती हैं या एक-दूजी को फोन करती हैं तो आपस में इन्हीं शब्दों से संबोधित होती हैं। मरजाणी! कुत्ती! लुच्ची! तीनों के हिस्से एक-एक शब्द आया था। गुस्से से नहीं, ईर्ष्या से नहीं, अपने पन से भरा हुआ, प्यार के साथ।

अब जहाँ मैं बैठी हूँ, यह एक कमरा नहीं। यह तो रीडिंग-रूम है, छ बाई छ का। रसोई के पीछे जगह बची थी। नक्शा बनाने वाले का इस ओर ध्यान ही नहीं गया था। यह एक तरफ पड़ता है। नीतीश ने प्लाई लगवाकर रीडिंग रूम बनवा दिया है। नीचे कार्पेट बिछा दी है। उसे नीचे फर्श पर बैठना अच्छा लगता है। मुझे नहीं। मुझे इसकी ज़रूरत पड़ी तो कुर्सी-मेज़ लाकर रख दिए। जिसे एकांत की आवश्यकता होती है या अकेला बैठकर पढ़ना चाहता है, वह यहाँ आ बैठता है। इस शर्त पर कि जब वह उठेगा तो अपनी कोई निशानी नहीं छोड़कर जाएगा। यह सख़्त अनुशासन है।

जब घर में कोई नहीं होता या होते हुए भी अपने कमरे में दूसरे की दख़लअंदाजी बर्दाश्त नहीं करता, या मैं बिलकुल अकेली होऊँ तो सोचने लग जाती हूँ - पैंतालीस बरस बीत गए। इन बरसों में मैंने क्या-क्या खास किया? क्या पाया, क्या कमाया? मुझे बार-बार लगता, बहुत गँवाया ही था। खाया, पिया, पति के साथ सो लिया। इससे बढ़कर क्या था? या फिर यही प्राप्ति थी कि बच्चे पैदा कर लिए। एक नीतीश की इच्छा से, दूसरे की ज़रूरत मैंने अहम समझ ली। नीतीश ने झूठा एफिडेविट देकर प्रोविडेंट फंड से पैसे निकलवाए। बड़ा काम छेड़ लिया। बजट गड़बड़ा गया। मैं अपने रिश्तेदारों की ओर दौड़ी। नीतीश ने दोस्तों के बाद, बहन जी और जीजा जी का पल्ला पकड़ा। बमुश्किल कोठी तैयार हुई। तीन साल उधार चुकाया। फिर दो पैसे जोड़े। बच्चे बड़े हो गए। उनकी माँगें बढ़ गईं। एक दिन वे कार की जिद्द करने लगे। नीतीश बेशक खुद तंग हो ले, पर बच्चों की माँग ज़रूर पूरी करता है। मैं पुरानी कार खरीदने के पक्ष में थी। उन्होंने नई निकलवाने की रट पकड़ ली। बैंक से लोन लेना पड़ा। नीतीश अपने जमा-घटा में फँस गया। मैं अपने हिसाब-किताब में उलझ गई।

कितनी जल्दी इतने वर्ष बीत गए।

मुझे कई चीज़ें पसंद आने लगी हैं, वही जिनकी ओर पहले मेरा ध्यान नहीं गया था या जिनके बारे में मैंने कभी सोचा नहीं था।

यह कौन-सा ग्लेशियर पिघलने लगा है। मुझे लगता है, मैं एक बार फिर जवान होने लगी हूँ। यह तब्दीली दो-एक सालों में आई है। मुझे आसपास अच्छा लगता है। मनमोहक। न तो मन मेरे वश में रहता है, न तन। यह बड़ी जल्दी बेलगाम हो जाता है। मेरे नियंत्रण में कुछ नहीं रहता। यह किसे बताऊँ या किससे पूछूँ - यह इतना बेलगाम पहले क्यों नहीं हुआ? शायद, हुआ भी हो। मैं बहुत-सी बातें भूल गई हूँ। मैं क्या याद करना चाहती हूँ, पर कुछ और ही याद आने लगता है। मैं कपड़े पहनती हूँ और नीतीश के सामने जा खड़ी होती हूँ। पूछती हूँ, "तुम्हें कैसे लगते हैं?" वह दूर से ही तारीफ़ के पुल बाँध देता है। किसी सूट को हाथ में पकड़कर नहीं देखता। एक इच्छा यह भी जागती कि वह मेरे कपड़े खुद खरीदकर लाए। मैंने अपने मन की बात उसे बताई थी। उसने कहा था, "पहले मैंने कभी खरीदे हैं! तू ही मेरे लिए खरीदकर लाती है। कपड़ों के मामले में मैं बुद्धू हूँ।" उसने इतना भोला मुँह बनाकर कहा था कि मैं मोह से भर उठी थी। कहा था, "हाँ, तुम बुद्धू हो, कई दूसरे मामलों में भी।"

मैं कौन-सा आत्म-पुराण खोलने बैठी थी, कौन-सा खोल बैठी। नीतीश ठीक कहता है, "आजकल तू फिजूल की बातें करने लग पड़ी है।"

यह मेरी कहानी है या सपना की या मनप्रीत की? इसके बारे में क्या कहूँ। हम तीनों एक जैसी हैं। अंदर से भी, बाहर से भी। तन से भी, मन से भी। फिर से जवान हुईं। उछलती-कूदती। अपने आप को बचा-बचाकर रखतीं। हमारे बीच उम्र का अधिक फ़र्क़ नहीं। फ़र्क़ तो कहीं से भी नहीं। चाहे सोशल-स्टेट्स हो या पति-बच्चे।

सपना मुझे छेड़ने लगी है। यह बड़ी जिद्दी है। बड़ी जल्दी बेसब्र हो जाती है। कह रही है कि पहले उसके बारे में बात करूँ।

मनप्रीत चुप है। उसमें बड़ा धीरज है।

सपना? मनप्रीत? मैं?

पहले सपना के बारे में ही बताती हूँ।

वह मेरी मौसी की बड़ी बेटी है। तंगी-तुर्शियों में जन्मी-पली। न अच्छा खाने को मिला, न पहनने को। ऊपर से बंदिशें ही बंदिशें। दमघोंटू माहौल। बाहरवाला दरवाजा खुला नहीं छोड़ना। छत पर नहीं जाना। जोर से नहीं हँसना। सपना ने पिछले कमरे में मंदिर

बना रखा था। बाँसुरी वाले की मूर्ति के आगे वह दो वक्त आरती करती। सोमवार का व्रत रखती। घर के नज़दीक वाले मंदिर में माथा टेकने जाती। घर से स्कूल और स्कूल से घर। रास्ते में कहीं भी न रुकने की हिदायत। उसकी सहेलियाँ उसे 'संतनी' कहा करती थीं। संतनी कहलाना उसे अच्छा लगता। उसका मन करता कि वह केसरी बाना पहने और वृंदावन चली जाए।

वह घर और स्कूल में बहुत कम बोलती थी। मौसा जी जब तक जीवित रहे, उन्होंने अपने मन की मर्जी की। सिर्फ़ और सिर्फ़ अपने पेट के बारे में सोचा। उनकी घड़ियों की दुकान थी। ग्राहक अच्छे आ जाते तो अंगरेजी बोतल खोल लेते। आगे-पीछे देसी चलती। उनका लीवर डैमेज हो गया। महीना भर अस्पताल में रहे। घर में जो दो पैसे थे, वे उनकी बीमारी में लग गए। ऊपर से उधार और सिर पर चढ़ गया। घर तो उनकी लाश भी न आई। सपना से छोटी दो बहनें थीं। एक भाई। कोई कमाऊ सदस्य नहीं था। मौसी पहले भी कभी खाली नहीं बैठती थी, उसने अब एक और सिलाई मशीन ले ली। सपना के लिए। सपना स्कूल से लौटकर मशीन पर बैठ जाती। यह सिलसिला रात के दस बजे तक चलता।

सोने से पहले वह स्कूल का काम करती। कपड़े सिलते-सिलते वह 'पाठ' दोहराती। हॉयर सेकेंडरी पार्ट टू किया और पंजाब सेलेक्शन बोर्ड में निकली क्लर्कों की भर्ती के लिए फार्म भर दिया। परीक्षा पास की। फिर सेलेक्शन हो गया। पहली नियुक्ति घर से तीस मील दूर गढ़शंकर में हुई। बस से जाना, बस से आना। घर की तंगी को कुछ रोक लगी। पर मौसी ने सिलाई मशीनें नहीं छोड़ीं। इसके बग़ैर गुजारा नहीं था। बस, इतना फ़र्क़ पड़ा कि उन्होंने सपना के हाथ से सूई-धागा छीन लिया। अब सपना वाली मशीन उससे छोटी वाली ने सँभाल ली थी। उन्होंने सपना को समझाया, "बेटी, तू अब अपने बारे में सोच।" उसने क्या सोचना था। उसके पास सोचने का समय ही नहीं होता था। सुबह आठ बजे घर से निकलती, शाम के साढ़े छह बजे घर लौटती। आने-जाने में थक जाती। उसे अपने से अधिक चिंता छोटी बहनों की थी। वह उन्हें पढ़ाती। याद किया हुआ सुनती। थककर सो जाती। छोटी बहनें मैट्रिक में थीं। छोटा भाई मिडिल में। उसका सेक्शन आफीसर एक भला पुरुष था। उसने ही जोर देकर उससे प्रायवेट ग्रेज्यूएशन करवाई। फिर उस सेक्शन ऑफीसर की बदली हो गई। जाते समय उसने समझाया कि उसे एस.ए.एस. की परीक्षा अवश्य देनी चाहिए। वह उधर ही जुट गई। पहली बार फेल हुई, दूसरी बार अंग्रेजी की एग्ज़मशन आ गई।

एक ही विषय रह गया। तीसरे साल उसने किला फतह कर लिया। दो महीने बाद वह लुधियाना में सेक्शन ऑफीसर लग गई। इंटरनल ऑडिट में। पच्चीस वर्षीय सेक्शन

अफसर। यह भी अपने आप में रिकार्ड था। फाइनेंस डिपार्टमेंट का एक अहम रिकार्ड। मौसी की खुशी देखने वाली थी। उनका तो जैसे जीवन ही सफल हो गया हो। सपना को नया स्केल मिला। तनख्वाह पहले से ड्यौढ़ी हो गई। पर मौसी इतनी जल्दी उसके पैसों को हाथ नहीं लगाती थी। वह पहले भी सपना को विवाह के लिए जोर डाल रही थी, अब और उतावली हो गई। उसने रिश्तेदारों के यहाँ दौड़धूप की। एम.बी.बी.एस. लड़का मिल गया। मिला नहीं, यह सपना की पसंद था। उसका अपना चयन था। दोनों की अपनी अंडरस्टैंडिंग थी। मौसी पहले अड़ी थी। नाराज हुई थी। फिर सपना का दृढ़ इरादा देखकर अधूरे मन से 'हाँ' कर दी थी।

यही सपना अब करीब दो महीने पहले घर से भाग गई।

उसकी भागने वाली बात का मुझे पता नहीं चला। वह कैसे बागी हो गई? उसमें इतना साहस कहाँ से आ गया? उसने इस बारे में मुझे क्यों नहीं बताया? वह तो छोटी-से-छोटी बात भी मुझसे साझा करती थी। वह फोन करके हटती कि तभी उसे कुछ भूला-बिसरा याद हो आता और वह मुझे दोबारा बताती। जैसे मैं उसकी 'गाइड' होऊँ। वह कहती, "अगर मैं अपना रंडी-रोना तेरे संग शेयर न करूँ, तो किससे करूँ?" मुझे उसकी बहुत-सी आदतें पसंद थीं। वह बहुत गंभीर थी। वह कोई भी बात कहने से पहले सोचती थी। संतुलित सोच रखती थी। बहुत कम बोलती। फिज़ूल बोलना उसे पसंद नहीं था। उसके पास फालतू समय ही नहीं होता था। सरकारी रूल्स और रेगुलेशन्स की माहिर। उसने अल्मारी किताबों से भर रखी थी। जब कभी अल्ट्रेशन होती तो उसके दिमाग में फीड हो जाती। एफ.डी. के कई सेक्शन ऑफीसर उससे परामर्श लेने आते। टेलीफोन करते। वह अपना काम भी किए जाती, बातें भी। उसके कमरे के लोग कहते, "मैडम, कुर्सी से सिर्फ़ तीन बार उठती है। दो बार बाथरूम जाने के लिए। एक बार लंच के लिए। नौ बजे दफ़्तर आ जाते हैं। चार पचपन पर अपनी कुर्सी छोड़ते हैं। जो काम घुग्गी मारकर हो सकते हैं, यह उनका अक्षर-अक्षर पढ़ते हैं। इन्हें कभी खाली बैठे नहीं देखा।"

थोड़ा रिलेक्स हो लूँ।

उसके बारे में जब भी सोचने बैठती हूँ तो 'टेंस' हो जाती हूँ। मेरी यह कोशिश होती है कि इसके बारे में किसी से बात ही न करूँ।

मुझे लगता है कि मैं इसके बारे में नहीं, अपने बारे में चिंतित हूँ।

क्यों न थोड़ा घूम-फिर लूँ। डॉक्टर ने मुझे सलाह दी है कि जब मैं परेशान होऊँ या सोच के काफ़िले मुझे तंग करने लगें तो मैं किसी न किसी काम में अपने को व्यस्त कर लिया करूँ। किसी को फोन ही कर लिया करूँ। किसी से मिलने ही चली जाया करूँ। किसी को ख़त ही लिखने बैठ जाया करूँ।

आज सवेरे से मैं परेशान हूँ। मैंने मनप्रीत को फोन किया था कि वह अभी मेरे पास आ जाए या मैं ही उसके पास चली जाती हूँ। उसे अपने पति के संग किसी के 'मरने' पर जाना था, मैं उसे रोक न सकी थी। अगर खुशी के अवसर पर जाना होता तो मैं उसे जाने नहीं देती। मैंने उसके साथ ढेर-सी बातें करनी थीं। मन की कुछ भड़ास टेलीफोन पर निकाल ली थी। अभी कुछ शेष रहता था। मैंने भट्टाचार्य को भी फोन मिलाया था। रिंग गई थी। पर मैंने बंद कर दिया था। उसकी गूढ़ ज्ञान की बातों की इस समय मुझे आवश्यकता नहीं थी।

उसकी कथा सुन लें।

अक्तूबर के पहले सप्ताह चार छुट्टियाँ आ गई थीं। कई प्रोग्राम बनाए। रद्द किए। मेरी, नीतीश और बच्चों की अलग-अलग इच्छा थी। बच्चे जयपुर जाना चाहते थे। नीतीश वाराणसी। मैं हरिद्वार। समय कम था। हरिद्वार सबसे नज़दीक दिखाई दिया। वहाँ दो दिन ठहरने का कार्यक्रम बनाया गया था पर रुके एक दिन ही। दूसरे दिन कार ऋषिकेश की ओर दौड़ा ली। वहाँ का खुला-खुला माहौल अच्छा लगा। लक्ष्मण झूला पार करके नीतीश और बच्चे 'चोटी वाले' को देखने लगे। अधेड़ से व्यक्ति को किलो भर पाउडर मलकर कुर्सी पर सजाकर बैठा रखा था। वह आने-जाने वाले के लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। मुझे बहुरूपिये अच्छे नहीं लगते। जसलीन और नवनीत उसके संग बातें करना चाहते थे। वे वहीं खड़े हो गए। मैंने नीतीश से कहा कि वे अपनी मर्जी से घूमें। मैं अपनी मर्जी से घूमूँगी। तीन बजे सामने वाले मंदिर के पास मिलेंगे। उसने मेरी तरफ देखा, मुस्कराया।

बहते पानी का संगीत मुझे अच्छा लगता है। पिछले साल मनीकरन गए थे। वहाँ बहते पार्वती दरिया के क्या कहने! मैं पुल पर एक घंटा खड़ी रही थी। ऊपर से पानी बड़े वेग से आता। बड़े-बड़े पत्थरों से टकराता। मधुर संगीत पैदा होता।

मैं गंगा के ऊपरी किनारे चलती रही। प्रकृति। उसकी नियामतें। मैं आत्ममुग्ध हो गई। फिर नीचे नदी के किनारे तक गई।

मुझे एक संत दिखाई दिया। अकेला बैठा। धूनी रमाए। आसपास से बेख़बर। अंतर्ध्यान!

मैं उसके सम्मुख बैठ गई। तेज बहते पानी से बेखबर। मैंने उसके चेहरे को निहारा। मुझे किसी लोकगीत के शब्द याद आए - 'मेरा कंत (पति) जैसे रात चाँदनी में दूध का कटोरा।'

मैंने धीमे से खाँसा। उसने आँखें खोलीं। मेरी तरफ घूरकर देखा। शायद, मेरे पहरावे से उसने मेरा मूल्यांकन कर लिया था। बोला, "प्लीज, सामने से मग में चाय ला दो।" सत्यवचन कहकर मैं उठ खड़ी हुई। जाना-आना किया। उसने धोती के बाईं ओर से दस का नोट निकाला। मेरी ओर सरका दिया। मैंने लेने से इनकार की मुद्रा में सिर हिलाया। वह खीझ उठा। उसने मग मेरे सामने रख दिया, "ये चाय भी तुम ही पी लो। मुझे नंग समझ लिया है।" मैंने नोट पकड़कर पर्स में रख लिया। उसने पेंदू बेर के बराबर अफ़ीम की गोली खाई। झटका देकर दो घूँट भरे।

उसने मुझसे मेरे बारे में, मेरे परिवार के बारे में पूछा। मैंने उससे झूठ बोला।

उसने कहा, "मैं सॉयक्लोजी का प्रोफेसर हूँ।"

एक बार तो मुझे पसीना आ गया। मैंने जैसे अपने आप को सँभाला।

वह बोला, "तुम अपने बारे में नहीं बताना चाहती तो तुम्हारी मर्जी। मैं अपने बारे में बताता हूँ। मैं हरिद्वार कभी-कभार आता हूँ। मेरे आने का कोई निश्चित समय नहीं होता। यह पीरियड कभी भी शुरू हो सकता है, कभी भी बंद हो सकता है। कलकत्ता में पुश्तैनी हवेली में कंप्यूटर रखा हुआ है। टेलीफोन भी। खूब पढ़ता हूँ। ई मेल खोलता हूँ। एक समय ऐसा भी आता है जब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मेरा परिवार। मेरे बच्चे। मेरे दोस्त, रिश्तेदार। मुझे एकांत की ज़रूरत होती है। हवेली के अंदर की 'चीं-चीं' से भयभीत होता हूँ। चोला पहनता हूँ। गंगा मइया के किनारे आ बैठता हूँ।"

वह एक ही साँस में कितना कुछ बता गया। वह अपने अकेलेपन से उकताया हुआ था। उसे किसी के साथ की ज़रूरत थी। वह अपने मन की बात किसी के संग साझा करना चाहता था।

मैंने तो उससे कुछ नहीं पूछा था। न ही मेरी ऐसी कोई मंशा थी। मैं एकांत चाहती थी। कुछ घंटे हों जब मुझे कोई न बुलाए। कोई आवाज़ न दे। सिर्फ़ और सिर्फ़ मैं होऊँ। मुझे ऐसा करते हुए अजीब-सा सुकून मिलता है।

उसने खँखारा। चिलम के लंबे-लंबे कश भरे। उसकी आँखें लाल थीं। लाल सुर्ख! मानो कई दिनों से सोया न हो। मुझे लगा कि वह जान-बूझकर अपने शरीर को कष्ट दे रहा है। यह कोई बहुत बड़ा राज छुपाए बैठा है। मालूम नहीं, किससे साझा करे। करे भी या न करे।

मुझे उससे भय लगा। मैं उठने लगी, इस डर के साथ कि ऐसा आदमी किसी भी वक्त खूँखार हो सकता है।

उसने मेरे हाव-भाव पढ़ लिए थे। बोला, "तुमने मुझे अनपढ़ समझ लिया। तुम्हें भयभीत होने की ज़रूरत नहीं। मैं ब्राह्मण हूँ। बाय बर्थ। सब-कास्ट शर्मा। भट्टाचार्य नाम मेरे दोस्तों ने दिया है। इसकी कथा लंबी है। फिर सुनाऊँगा। मैं पंद्रह बरसों से कलकत्ता यूनिवर्सिटी में सॉयक्लोजी पढ़ा रहा हूँ।"

मुझे उसका ब्राह्मण होना अच्छा लगा था। मुझे एक पल को यह भी लगा था कि मैं अपनी जाति के एक मर्द के सामने बैठी हूँ। पता नहीं कैसे, वह मुझे अच्छा लगने लगा था। अपना-अपना।

वह अंतर्ध्यान हो गया। दसेक मिनट सीधा तनकर बैठा रहा।

फिर सामान्य से कुछ ऊँचे स्वर में बोला, "क्या पूछना चाहती हो?"

मैंने कुछ गुंझलें खोलनी चाही थीं। पर मैं असमंजस में थी कि पहले किसके बारे में पूछूँ।

मैंने पूछा था, "औरत और मर्द के बीच दूरियों की जड़ का आधार क्या है?"

उसने हैरानी के साथ मेरी ओर देखा था। ठीक वैसे ही, जैसे सपना ने मनप्रीत से जब पूछा था, "मर्द औरत से क्यों डरता है?" ठीक वैसे जैसे मनप्रीत ने मेरी ओर घूमते हुए कहा था, "औरत और मर्द एक-दूसरे से डरते हैं।" उसने चिलम का लंबा घूँट भरा। गंगा के तेज बहते जल की ओर निहारा। बताने लगा, "औरत और मर्द के मध्य दूरियों की जड़ का बड़ा कारण उनके स्वभाव और रुचियों के बारे में अज्ञानता है। पिछले दिनों मैंने अमेरिकन सॉयक्लोजिस्ट जान ग्रे की रिसर्च बुक का अध्ययन किया। उसने इस विषय पर बहुत काम किया है। उसने इन दूरियों की जड़ खोजने के लिए एक फार्मूला पेश किया। इस दुनिया के निर्माण से पहले स्त्री और पुरुष दो पृथक-पृथक ग्रहों पर निवास करते थे। पुरुष मंगल पर रहता था, स्त्री वीनस पर। एक दिन पुरुष ने वीनस ग्रह पर स्त्री को देखा। उसके लिए स्त्री अद्भुत चीज़ थी।

वह स्त्री के पास गया। स्त्री ने पहली बार किसी पुरुष को देखा था। दोनों ने एक-दूसरे को जी भरकर भोगा। वे परस्पर लड़ते नहीं थे। उन्हें पता था कि वे दो अलग-अलग ग्रहों पर हैं। ईश्वर उनकी खुशी सहन न कर सका। उसने अपनी शक्ति से पुरुष के मस्तिष्क में गलत विचार भर दिए। उसने उन्हें धरती पर भेज दिया। यहाँ की तपिश से स्त्री-पुरुष के दिमागों की 'मैमोरी चिप्स' जल गईं। उन्हें यह बात याद ही न रही कि वे भिन्न-भिन्न ग्रहों से आए हैं और दोनों अलग-अलग हैं। दोनों ही एक-दूजे के बारे में सोचते हैं कि दूसरा भी उसी की तरह सोचता है। पर सच्चाई यह है कि वे हैं अलग-अलग।" उसने मेरी ओर देखा। यह देखने के लिए कि उसकी बातों का मेरे पर कितना प्रभाव पड़ा है। मैं उसके ज्ञान के सम्मुख नतमस्तक थी। वह तो महाज्ञानी था। वह पुनः बताने लगा, "मेरा अपना ख़याल है कि ऐसा बहुत कुछ और भी है जिसे हम संस्कार कहते हैं। हमारे बुज़ुर्गों के अनुसार यह सारा चक्कर संस्कारों का है। पूर्व जन्म के संस्कार। विरासत में मिले संस्कार। हमारे आसपास के वातावरण द्वारा दिए गए संस्कार। उनसे कोई जितना चाहे भाग ले, ये पीछा नहीं छोड़ते। पिछले तीन सालों से मैं इनकी स्टॅडी कर रहा हूँ। कंप्यूटर में डाटाज़ फीड कर रहा हूँ। शायद कोई सूत्र हाथ में आ जाए। मैंने बहुत कुछ कंप्यूटर पर छोड़ रखा है। ठीक वैसे जैसे ब्रिटिश एंबेसी के असिस्टेंट किया करते हैं। मुझे एक बार इंग्लैंड जाना था। मैं ब्रिटिश एंबेसी गया। डीलिंग असिस्टेंट प्रश्न करता गया। मैं उत्तर देता गया। उसने कंप्यूटर में सब फीड कर लिया था। आखिर, उसने कंप्यूटर की सलाह ली। कंप्यूटर ने 'नो' में जवाब दिया था। अब मैं भी यही एक्सपेरिमेंट कर रहा हूँ। अगर मैं सफल हो गया, मैं तुम्हें इन संस्कारों से मुक्ति की राह बता दूँगा।"

मैंने सपना को भट्टाचार्य के बारे में बताया था। उसने गर्व से कहा था, "यूँ ही तो नहीं लोग ब्राह्मणों को पूजते।"

सपना को गए दो महीने बीत गए। उसका सिर्फ़ एक बार फोन आया था, "कुलबीर, मैं अपनी बनाई दुनिया में खुश हूँ। तू मेरे बारे में ज्यादा न सोचना।" मैं कुछ पूछती कि उसने रिसीवर रख दिया था।

मैं उसके बारे में सोचने लगी। सपना और दीपक। जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू हों। आदर्श जोड़ी। वैल सैटिल्ड। अपनी कोठी। कार। खुद फूड एंड सप्लाई में डिप्टी कंट्रोलर। दीपक एक सरकारी अस्पताल में सीनियर डॉक्टर। दो बच्चे। हरप्रीत कंप्यूटर साइंस में एम.एस.सी. कर रही थी। छोटे जसलीन का एम.बी.बी.एस. में द्वितीय वर्ष था। न किसी का लेना, न किसी का देना।

एक बार मैंने उससे पूछा था, "ये क्या नाम हुए भला? हरप्रीत वर्मा। जसलीन शर्मा।"

"मैंने जसलीन को अपनी सब-कास्ट दी है। दीपक ने हरप्रीत को। है न अच्छा मेल। यह हमने जान-बूझकर किया। हमने अभी बहुत कुछ नया करना है। हरप्रीत का सुखपाल से इश्क चल रहा है। शायद वह उसी से विवाह करवा ले। हमें कोई शिकायत नहीं। बच्चों की खुशी में हमारी खुशी है। इस विषय में मैंने अपने बैच के एक कुलीग से बात की तो उसने बताया कि सुखपाल बैकवर्ड कास्ट की एक कैटेगिरी से बिलांग करता है। मैंने उससे पूछा कि है तो आदमी। वह हरप्रीत का हमजमाती। दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं। एक-दूजे के घर आते-जाते हैं। आगे-आगे देखना, होता है क्या।"

मैंने दीपक को फोन किया था। उसने बताया था, "मैं तो पूना मेडिकल कैंप में गया हुआ था। हरप्रीत की छुट्टियाँ थीं। वह आई हुई थी। उसने ही बताया था कि मम्मी ने दूध का गिलास दिया था। गुड नाइट कहा था और अपने बैडरूम में चली गई थी। वह सवेरे न उठी तो हरप्रीत को चिंता हुई कि उसकी मम्मी अभी तक क्यों नहीं उठी। वह तो सुबह पाँच बजे उठ जाया करती थी। उठकर स्नान करती। पूजा-पाठ करती। छह बजे चाय के कप लेकर हरप्रीत के पास आ बैठती। उसे अपनी मम्मी की चिंता हुई। उसे भी इतनी जोरों की नींद आई हुई थी कि सुबह आठ बजे कहीं आँख खुली थी। वह मम्मी के कमरे की ओर दौड़ी थी। उसने दरवाजा खोला तो सपना के मेज पर एक रुक्का पड़ा हुआ था, "मैं अपनी मर्जी से जा रही हूँ। मुझे तलाशने की कोशिश न करना।"

मैंने दीपक को हिम्मत रखने के लिए कहा था। वह फफक पड़ा था, "हम तेइस बरस में कभी नहीं लड़े। एक-दूसरे को फालतू शब्द नहीं बोला। हम एक-दूजे की पसंद जानते थे। जो मैं कर दूँ, उसे मंजूर। जो उसने कर लिया, मुझे स्वीकार। एक दिन कहने लगी - मेरा मन करता है कि तुम मेरे साथ लड़ो। झगड़ो। पता नहीं उसके मन में क्या आया, बोली - मुझे खींचकर थप्पड़ मारो। मैंने उससे कहा - अरे, तू तो पागल हो गई है।"

सपना आने से पहले मुझे फोन करती थी। मैं मनप्रीत को।

वह आती। वह चाय पीने की बहुत शौकीन थी। मुझे उठने न देती। मनप्रीत को कहती, "प्लीज़ मन, चाय ही बना ला।" मनप्रीत बड़ी अच्छी है। माथे पर शिकन नहीं डालती। वह बग़ैर कुछ पूछे रसोई में चली जाती। मुझे लगता - सपना अकेले में मेरे साथ कोई

राज की बात साझा करना चाहती थी। लेकिन बात को अंदर ही अंदर दबा जाती थी। कुछ न कुछ अवश्य था।

हम तीनों मिल बैठतीं तो गंदी बातें करने लगतीं। लुच्ची बातें सुनातीं। हमें स्वाद-सा आता। हम हँस-हँसकर दोहरा-तिहरा होतीं रहतीं। कभी गंभीर भी हो जातीं। चुप भी हो जातीं।

यह बात मनप्रीत ने सुनाई थी, "पार्टीशन से पहले किसी लड़की का मुकलावा आ गया। उसकी सहेलियों ने उसे समझाया कि आज की रात आदमी के काबू में नहीं आना। अपने नाड़े में इतनी गाँठें मार लेना कि एक-एक को खोलते तेरे खाविंद को आधा घंटा लग जाए। वह एक गाँठ खोलकर जब दूसरी को हाथ लगाए तो तू उससे बुझारत पूछना। कहना - पहले बुझारत बूझ। गाड़ी फिर आगे चलेगी। लो जी, गाँठें खोलते और बुझारतें बूझते उन्हें खुद की होश तब आई जब उसकी सास की आवाज़ सुनाई दी - बेटी प्रीतो, जंगलपानी नहीं जाना।" सपना तो हँस-हँसकर दोहरी-तिहरी हो गई। कहने लगी, "तूने मुझे यह बात पहले क्यूँ नहीं बताई? मरजाणी! तू बहुत खतरनाक औरत है।"

मनप्रीत ने उससे पूछा था, "लुच्ची! मुझसे झूठ न बोलना। सच सच बता - तुझे आदमी का कौन-सा अंग अच्छा लगता है?"

"छाती। चौड़ी छाती जिस पर मैं सिर रखकर सो सकूँ।"

"मुझे तो होंठ अच्छे लगते हैं।"

"कुलबीर तू बता।"

"मुझे जांघें अच्छी लगती हैं, भारी-भारी। मुझे तीसेक साल का आदमी खींचता है।"

"अगर मुझसे कोई पूछे कि अच्छे आदमी की परिभाषा दे तो मैं इस तरह दूँगी।" सपना ने मनप्रीत का मुँह अपनी ओर करके कहा, "उम्र चालीस साल, बारीक-पतले होंठ, चौड़ा माथा, कंचे जैसी आँखें, जीन्स की पैंट, ऊपर के दो बटन खोलकर पहनी हुई टी-शर्ट। वह मेरे सामने आ बैठे और मैं उसे देखती रहूँ। यह मेरा सपना है।" उसने गहरा साँस लिया और बोली, "अपनी जाति का हो।"

तुझे मनप्रीत के बारे में बताऊँ। मैंने इसकी कहानी तुझे बाद में बतानी थी। शायद न ही बताती। अब लगता है, इसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसके बग़ैर यह कहानी अधूरी रहनी थी।

यह बड़ी घुन्नी है। पहले चुपचाप बातें सुनती। कोई 'हूँ-हाँ' न करती। मानो यह किसी की बात में हाज़िर ही न हो। मानो इससे इसको कोई लेना-देना ही न हो। पर बात का जवाब ऐसे देती कि सुनने वाला उँगलियाँ मुँह में ले लेता।

यह पाँचेक बरस पहले हमारी टोली में आ मिली थी।

मैंने इसके बारे में कभी गंभीरता से नहीं सोचा था। तब से ही, जब से इसने दफ्तर ज्वाइन किया था। आत्मकेंद्रित औरत! हल्के रंग के कपड़े पहनती। अपने काम से मतलब रखती। अपने लिए एक कप चाय का मँगवाती। दिन में दो बार। पहले दस बजे, फिर तीन बजे। किसी दूसरे कमरे से कोई संबंध नहीं रखती थी। न ही किसी अफसर के पास बग़ैर किसी मतलब के बैठती। अगर अकाउंट अफसर या डिप्टी कंट्रोलर बुला भी लेता तो खड़ी-खड़ी ही लौट आती। फिर बात यहाँ तक पहुँच गई कि इसे कोई बैठने के लिए भी न कहता। चाय के लिए न पूछता।

यह आती। रजिस्टर में हाज़िरी लगाती। अपनी सीट पर आ बैठती। डाक डील करती। इतना ज़रूर था कि यह अपने कमरे के पाँचों कुलीग्स को बारी-बारी से 'सत्श्री अकाल' बुलाती। आते और जाते समय। उनकी किसी अन्य बात में बिलकुल भी ध्यान नहीं देती। यहाँ तक कि हुंकारा भी न भरती। काम खत्म हो जाता या कोई चिट्ठी डील करने वाली न होती तो अपने पर्स में से अखबार निकालती और पढ़ने लगती।

जब भी दफ्तर में सीटों की अदला-बदली होती तो इसका नंबर अवश्य लगता।

इसके बारे में एक बात भी मशहूर थी कि यह किसी पार्टी में नहीं जाती। सिवाय रिटायर होने वाले कुलीग की पार्टी के। न ही किसी अखंडपाठ के भोग या जागरण में जाती। न ब्याह-शादी में। पर अगर किसी का करीबी रिश्तेदार मर जाता या कोई अस्पताल में पड़ा होता तो यह उसका हालचाल पूछने अवश्य जाती।

पंद्रह साल यह ऐसे ही रही थी।

अब पिछले पाँच बरस से यह कुछ अधिक ही बोलने लगी है। दूसरों के बारे में कुछ ज्यादा ही फिक्रमंद हो गई है। नंदबलब सीढ़ी चढ़ते हुए गिर गया था। उसकी दाईं टाँग

ऊपर से टूट गई थी। इसने नंदबलब के इलाज के लिए हजार रुपया दिया था। एक-एक कमरे में जाकर कलेक्शन भी की थी। कइयों से जोर-जबरदस्ती से पैसे निकलवाए थे।

यह अब गहरे रंग के कपड़े पहनने लगी है। मेकअप हल्का-हल्का करती है। पहले से ज्यादा टिपटाप रहती है। इसमें इतना उत्साह आ गया कि यह दौड़ी फिरती है। थकावट इसके पास नहीं फटकती।

एक बार बलजिंदर अकाउंटेंट इसके पास आ बैठा था। उसने इससे वेतन के बजट के बारे में सालाना खर्च पूछना था। बलजिंदर महा बातूनी। भोला-सा बनकर अपना काम करा लेता। उसकी एक ठरक भी थी जिसे उसने इसके साथ साझा भी किया। इसकी कमीज का एक सिरा पकड़कर पूछने लगा, "मैडम, यह कपड़ा कितने मीटर वाला है? मुझे अपनी मिसेज को लेकर देना है।" इसने लाल आँखों से उसे घूरा, "मुझे अपने घर का पता दो। मैं शाम को सात बजे आऊँगी। बहन जी से पूछूँगी कि सचमुच उन्हें ये रंग पसंद है।" बलजिंदर को कोई जवाब नहीं सूझा। शायद, उसे इसकी आस नहीं थी। वह कुछ कहने ही वाला था कि यह बोली, "आज के बाद, खर्चे के बारे में नोटिंग पर ही पूछा कर। तुम्हें अपनी सफ़ेद दाढ़ी का भी ख़याल होना चाहिए।" यह नोटिंग लिखने में माहिर थी। इसे केस को उलझाना भी आता था और सुलझाना भी। अफसर इसकी ए.सी.आर. उत्तम लिखते थे।

एक दिन अचंभा हुआ। मुझे इससे ऐसी उम्मीद नहीं थी। मैं इसके संग उतनी ही बात करती, जितनी ज़रूरत होती। यह भी दफ्तर के काम के संबंध में मेरे से पी.एफ.आर. और सी.आर.आर. लेने आती थी। यह तो हमारे साथ लंच भी नहीं करती थी। यही मनप्रीत धीरे-धीरे परत-दर-परत खुलती गई। मेरे पूछने पर इसने बताया, "मुझे तो अब मालूम हुआ कि ज़िंदगी के क्या मायने होते हैं। चवालीस बरस और उनमें से बाइस साल की ब्याहता ज़िंदगी - बस यों ही बीत गए। घर से दफ्तर और दफ्तर से घर। यही मंजिल, यही संसार। छुट्टी होती तो सामने ढेर सारे काम होते। काम ही काम। न अपनी सुध रहती, न अपने मियाँ की। उनकी बहुत-सी इच्छाओं का विरोध करती। या कह लो, हो जाता। इच्छा नाम की चीज़ ही मर गई थी। अब बच्चे बड़े हो गए। बड़ा इस साल यूनिवर्सिटी में चला गया। छोटा फर्स्ट ईअर में है। मेरे बच्चे बहुत अच्छे हैं। जब दफ्तर से लौटती हूँ तो बड़ा रमेश मेरे लिए चाय का कप बना लाता है। दोनों ने अपने-अपने काम बाँट रखे हैं। मेरे जिम्मे सिर्फ़ रोटी बनाने का काम आया। यह भी मैंने ही जोर देकर अपने पास रखा। जगदीश कई बार कह चुका है - मम्मा, मुझे आटा गूँधना सिखा दो। तुम आराम से बैठकर टी.वी. देखा करो।"

इसने चाय मँगवा ली। मेरे से पूछने लगी, "तुम्हारे कितने बच्चे हैं?"

"छोटा, रुड़की में इंजीनियरिंग कर रहा है। बड़ा कंप्यूटर साइंस के दूसरे साल में है।"

"फिर तो तुम फुर्सत में हो?"

"बिलकुल।"

"मेरे बच्चे अब अपने कमरे में सोने लग पड़े हैं। जगदीश तो दसवीं तक मेरे साथ ही सोता रहा। शायद, वह अभी भी मेरे साथ सोता, यह तो रमेश ने उसे घूरा और समझाया।"

यह दिन-ब-दिन मेरे करीब आती गई। हम लंच एक साथ करने लगीं। सर्दियों में सामने वाले पार्क में जा बैठतीं। रात में एक-दूजे को फोन करतीं। मैं इसके घर चली जाती या यह मेरी तरफ आ जाती। जब मैंने इसे पहली बार सपना से मिलवाया तो इसने सपना को दीदी कहा था। सपना ने कहा था, "यह क्या बात हुई। मैं अभी इतनी बूढ़ी नहीं हुई। मेरा नाम सपना है। कह तो एक बार सपना।"

सपना जिंदादिल औरत थी।

वह पिछली बार कब आई थी, मुझे ठीक से याद नहीं। इतना भर अवश्य याद है कि दीपक के किसी कुलीग के लड़के की शादी थी। दीपक को किसी काम से जाना था। वह जाते हुए उसे मेरे पास छोड़ गया था। उसने कहा था, "यह मेरी अमानत, जब तक मैं नहीं लौटता, मेरी यह अमानत तुम्हारे हवाले।"

"यह मेरी अमानत" सपना ने ये शब्द दोहराये थे और ऊँची आवाज़ में कहा था, "मैं अपनी अमानत आप हूँ। आय डेम केयर ऐनी बडी।"

उसने ऊपरी तौर पर कहा था। उसकी दुनिया का घेरा तो दीपक तक सीमित था। इससे बाहर वह जा ही नहीं सकती थी।

वह सोफे पर से उठकर दीवान पर टाँगें पसारकर बैठ गई थी। खुलकर। मैंने उससे पूछा था, "मनप्रीत को बुलाऊँ?"

"अभी नहीं।"

"क्यों?"

"आजकल वह सैक्स की बहुत बातें करती है।"

"तू भी तो करती है।"

"मैं सिर्फ़ तेरे साथ करती हूँ।"

"मैं दोनों के साथ करती हूँ।"

टेलीफोन की घंटी बजी थी। मुझे जाना पड़ा था।

वापस आकर मैंने पूछा था, "हाँ, बता, क्या बनाऊँ?"

"मैं तो पार्टी से टुन्न होकर आई हूँ।"

"यह तो मुझे मालूम है।"

"तू फारमिल्टी क्यों करती है?"

उसे औपचारिकता पसंद नहीं थी। भूख लगती तो वह रसोई में जा घुसती थी।

"थक गई?"

"नहीं।"

"क्या-क्या खाया?" मुझे कोई और बात न सूझी तो मैंने पूछ लिया था। वह हाथ मारकर हँसी थी, "कुलबीर, तू पैंतालीस साल की हो गई पर तेरी वही आदतें हैं। बच्चों जैसी। तुझे मेरी बात झूठ लगती होगी। मैं इसे सच करके दिखाती हूँ। तैंतीस साल पीछे चल। हम दोनों ननिहाल गई थीं। माँ ने मुझे तरखाणों के विवाह पर भेजा था। मामी के साथ। तू खुद जाने को तैयार बैठी थी। माँ ने समझाया कि ज्यादा बंदे जाते अच्छे नहीं लगते। रात में सोते समय तूने मुझसे बार-बार पूछा था - कुत्ती! तू अकेली चली गई। पहले यह बता, वहाँ क्या-क्या खाया। हत्त तेरी की, ज़िंदगी में खाने-पीने के अलावा भी बहुत-कुछ होता है। छोड़ इस रंडी रोने को। यह बता, यू सैक्सुअली सैटिसफाइड?"

मैं चुप। मैं यही सवाल उससे पूछना चाह रही थी।

"यू सैक्सुअली सैटिसफाइड?"

"ऑफ कोर्स!" मैं पहली बार उसके सामने झूठ बोली थी।

"पर मैं नहीं। शायद मैं दीपक को छोड़कर भाग जाऊँ। मुझे उससे मैरिज नहीं करनी चाहिए थी। मुझसे गलती हो गई।" वह मुझसे लिपटकर फफक पड़ी थी।

मनप्रीत ने आना है। मैंने उसे फोन करके बताया है। वह अभी तक आई क्यों नहीं। छह बज चले हैं। वह तो समय की पाबंद है। मुझे उसके साथ सपना का केस डिस्कस करना है। नहीं, मुझे उसके साथ उसका केस डिस्कस करना है। उसने भी इंटरकास्ट शादी की है। उसके अंदर बहुत सारी गाँठें इकट्ठा हुई पड़ी हैं। उसने एक दिन फोन पर मुझसे कहा था, "अब जब तेजवंत मेरे साथ सोने की जिद्द करता है तो मुझे उससे घिन्न आती है।" पर मैं अपने बारे में किससे कहूँ। सपना को मेरी केस-हिस्ट्री का पता था। शायद, मनप्रीत को भी पता हो। इसके बारे में कुछ कह नहीं सकती।

बाकी बाद में लिखूँगी। पहले संत भट्टाचार्य को फोन कर लूँ। शायद वह अपनी हवेली में हो। क्या मालूम समाधि पर बैठा हो। वह भी बड़ा मचला संत है। मन करे तो हफ्ते बाद फोन कर लेता है। चुप रहे तो उसका दो-दो महीने तक कोई अता-पता नहीं लगता। अगर मिल जाए तो पूछूँ कि सपना की केस-हिस्ट्री कंप्यूटर में फीड करके बता, कोई इस तरह भी रिश्ता तोड़ सकता है?